प्राथमिक शिक्षा में खेल

❑ प्रेमनारायण

प्राथमिक शिक्षा में खेलों की महत्ता के विविध आयामों पर 'शिक्षा-विमर्श' के पिछले अंक से जो संवाद शुरू किया था, उसे आगे बढ़ा रहे हैं । खेल बच्चे के आरंभिक समाजीकरण और उन्हें सीखने के लिए प्रवृत्त करने का काम करते हैं । खेलों से बच्चों में सहयोग, समूह भावना, नियम-निर्माण और उनकी अनुपालना तथा अभिव्यक्ति कौशल विकसित होते हैं । लेकिन सभी खेलों से ऐसा हो, यह जरूरी नहीं है और न सिर्फ खेल खिला देने भर से ही यह सब हो जायेगा । यहां से प्राथमिक शिक्षा में खेलों को लेकर शिक्षक की भूमिका और खेलों का शैक्षणिक पहलू खुलता है ।

बालक जब विद्यालय आता है तो उसके पास कुछ क्षमतायें पहले से ही मौजूद होती है । उसके पास कुछ समझ होती है वह अपने घर, परिवार, पड़ौस या अपने साथियों से सीखता है । उसके पास कुछ कौशल होते हैं, जो विद्यालय आने से पहले उसके द्वारा किये गये क्रियाकलापों से विकसित हुए हैं । परन्तु यह सभी प्रारंभिक स्तर तक होते हैं । विद्यालय में शिक्षक बच्चे की अर्जित क्षमताओं समझ व कौशलों को तरास कर, उनको विकसित कर एक यथेष्ट स्तर तक पहुंचाने का प्रयास करता है ।

विद्यालय में बालक की समझ को आधार बनाना, बालक को भाषा के उपयोग के विभिन्न अनुभव देना, तथा बालक की भाषा व अर्जित ज्ञान से शिक्षण आरंभ करना ऐसी शर्त है, जो शिक्षण कार्य के लिए जीवन्त व क्रियाशील वातावरण की मांग करती है । ऐसा वातावरण जिसमें बालक खुलकर भाग ले सकें, बोल सकें, चर्चा कर सकें, नियम कायदे बनाने में सक्रिय भागीदारी निभा सकें। जो वातावरण बालक को अपनी बात कहने के लिए प्रेरित कर सके, कहने के अवसर उपलब्ध कराये, स्वानुशासन की ओर प्रेरित करे, अपनी ऊर्जा का भरपूर उपयोग करने के लिए अवसर उपलब्ध कराये । ऐसा वातावरण तभी संभव हो सकता है, जब बालक उसके बनाने, रक्षण करने व यथा संभव परिवर्तन में पूरे मन से भागीदार हो तथा उसमें आनन्द ले । निश्चित ही विद्यालय में ऐसा वातावरण एक बाल समूह में ही बन सकता है । जहां सभी बालक लगभग हम उम्र के होंगें तथा एक-दूसरे के सहयोग से ऐसा वातावरण निर्माण कर सकेंगे । अत: शिक्षण में ऐसी गतिविधियों को स्थान मिले, जिसमें सबको आनन्द आये, सबकी क्षमताओं को चुनौती मिले, सबको चुनौतियों का सामना करने का एक बौद्धिक संतोष मिले । पर किसी भी शाला में मिलने वाले बाल समूह के सदस्यों की क्षमतायें विभिन्न स्तरों की होती हैं । अत: हमें विभिन्न स्तरों वाले बाल समूह को स्वीकार करते हुए ऐसी गतिविधियों का चयन करना होगा, जिसमें विभिन्न स्तरों पर भाग लेना संभव हो । आनन्द लेना संभव हो । सीखना संभव हो । सौभाग्य से शिक्षण में ऐसी गतिविधियों की कोई कमी नहीं है । ऐसी गतिविधियों की सूची में खेल भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

बालकों के लिए खेलों का महत्व सदा से ही रहा है । खेलों के बिना बचपन अधूरा व नीरस सा लगता है । खेल वह गतिशील क्रियात्मक कार्य है, जो बचपन में रंग भरता है, बच्चों में एक नई ऊर्जा का संचरण करता है और कराता है स्फूर्ति का अहसास । खेल बच्चों को एक सहज वातावरण देता है । खेल बच्चों का शारीरिक विकास तो करते ही हैं पर साथ ही मानसिक विकास में भी मददगार होते हैं । अभी भी गांवों में बच्चे अपने स्थानीय खेल खेलते हुए दिखाई दे जाते हैं - जैसे गर्मियों में लुका-छिपी, चोर सिपाही, सर्दियों में कंचे व बरसात में गुल्ली डण्डा आदि।

पर, बड़े खेद की बात है कि आज विद्यालयों में ऐसी महत्वपूर्ण गतिविधि को नकारा जा रहा है, जो प्राथमिक शिक्षण के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। आज विद्यालयों में यदि खेलों के नाम पर कुछ गतिविधियां की भी जाती हैं तो उनमें कबड्डी खो-खो, वालीबॉल, फुटबाल, क्रिकेट आदि खेल होते है, जो शैक्षणिक व मनोरंजनात्मक कम बल्कि प्रतिस्पर्धात्मक ज्यादा है । इन आधुनिक खेलों में कुछ स्थिर नियम होते हैं, जिनके साथ बच्चों

को छेड़खानी करने का अधिकार नहीं होता। दूसरी बात ये खेल किसी प्रतिस्पर्धा में भाग लेने की भावना से खेला जाता है, जिससे एक सहज वातावरण नहीं बन पाता । तीसरी बात ये खेल बच्चों के परिवेश के नहीं होते, अत: ज्यादातर बच्चे इन से बाहर ही रहते हैं । यदि प्राथमिक शिक्षा में शैक्षणिक गतिविधि के रूप में स्थानीय या ऐसे खेलों को शामिल किया जाये जिनमें अधिक से अधिक बच्चे भाग ले सकें तो इनके माध्यम से विद्यालय में पीछे वर्णित वातावरण बनेगा। इन खेलों में बालकों में कई प्रकार की क्षमताओं, दक्षताओं व कौशलों के विकास की असीम संभावनायें छिपी हुई हैं जिनमें से कुछ का जिक्र मैं यहां कर रहा हूं जो मुझे दिगन्तर विद्यालयों में बच्चों में विकसित होती हुई नजर आई है ।

(एक) बालक जब विद्यालय में आता है तो वह अकेला होता है। उसे शाला में एक ऐसे वातावरण की आवश्यकता होती है जिसमें वो सहज रह सके । यह तभी संभव है जब यह वातावरण भय रहित हो तथा शिक्षक के साथ बालक के सहज स्नेहपूर्ण संबंध हों। बालक जैसा है उसको अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के साथ स्वीकारे जाने का बोध हो । इस प्रकार के वातावरण में बालक शिक्षक से अपने मन की बात कह देता है । वह शिक्षक से कई प्रकार के प्रश्न पूछता है जिससे उसमें जिज्ञासा बढ़ती है और बढ़ता है आत्म विश्वास । इस प्रकार का वातावरण तभी बन सकता है जब शिक्षक और बालक साथ साथ खेलें । शिक्षक भी खेल में वह सब क्रियाकलाप करे जो बालक करते । तो बालक को शिक्षक में एक अपनापन लगता है । और बालक शिक्षक के नजदीक आने की ज्यादा से ज्यादा कोशिश करता है ।

(दो) बालक जब विद्यालय में आते हैं तो अकेले अकेले आते हैं । वे एक दूसरे को जानते पहचानते हो सकते हैं, उनमें कुछ खेल में साथी भी रहे हो सकते हैं पर यह नहीं कहा जा सकता कि उन बालकों का पहले से ही सीखने में प्रवृत्त एक समूह बना हुआ है । सीखने के लिए, सार्थक गतिविधियां चलाने के लिए आवश्यक है, कि बालकों का एक सीखने में प्रवृत्त समूह बने । किसी समूह में काम करने के लिए बालक के लिए कुछ चीजें समझना, सीखना आवश्यक है। जैसे सहयोग करना, दूसरे बालकों की बातें ध्यान से सुनना, उसके क्रिया कलापों को आवश्यकतानुसार ध्यान से देख पाना, अपनी बारी का इन्तजार करना तथा इन्तजार के दौरान चल रही गतिविधियों में रुचि बनाये रख पाना आदि । ये सब चीजें खेल के माध्यम से स्वत: ही होती चली जाती हैं ।

(तीसरी) बालक की भाषाई क्षमताओं के विकास में सहायक होने के लिए यह आवश्यक है कि अध्यापक उसकी वर्तमान क्षमताओं को जाने, उसके स्वभाव, रुझानों को समझे, उसकी संपूर्ण समझ व मानसिक तथा नैतिक विकास की वर्तमान स्थिति का एक खाका अपने मन में बनाये । खेलों में बालक अपनी सहज अवस्थाओं में होते हैं। अत: बालक के साथ खेलने में यह सब कर पाना शिक्षक के लिए सहज ही संभव हो पाता है। जिस शिक्षक ने यह सब ठीक तरह से समझ लिया, वह शिक्षक बच्चों के लिए शैक्षणिक कार्यक्रम ठीक से बना पाया है और लागू कर पाया है ।

हमें सोचना चाहिये कि हम विद्यालय में बच्चों को खेलों की दुनिया से दूर न करें, बल्कि विद्यालयों में विशेषकर प्राथमिक शिक्षा में खेलों के महत्व को स्वीकारते हुए बढ़ावा दें ताकि बालक अपने आपको आनन्दित, उल्लासित, स्फूर्तिवान, हमेशा तरोताजा महसूस करें । विद्यालय को एक कठोर अनुशासित, नीरस स्थान के बजाय आनन्द देने वाली, आनन्द के साथ ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में भागीदार संस्थान के रूप में देखें और देखें अपनी उस जगह के रूप में, जहां बालक अपनी बाल क्रीड़ाओं के साथ आनन्द की हिलोरें लेते हुए ज्ञानार्जन करता है।

(चौथी) खेलों के अपने नियम कायदे होते हैं । खेल में भाग ले रहे सभी बालकों के लिए उनको जानना, मानना व पालन करना आवश्यक है । इस बात में भाषा शिक्षण तथा नैतिक विकास की असीम संभावनाएं छिपी हुई हैं । बालक इन नियम कायदों को सुनने बताने में भाषा का जीवन्त सटीक उपयोग करता है । उनके मानने में स्वीकृति विधान पर स्वेच्छा से चलने की प्रवृत्ति के विकास के बीज है । उनको तोड़ने पर बहस और विवाद नियमों के औचित्य पर बहस तथा कानून के समक्ष समानता सीखने के उदाहरण हैं।

परिस्थिति विशेष में उन पर विचार करके उनको बदलना लोकतांत्रिक संविधान निर्माण की प्रक्रिया का बीज रूप है । खेलों के माध्यम से इन सारी चिंतन प्रक्रियाओं तथा व्यवहारों के विकास का सफल प्रयास संभव है ।

(पांच) खेलों में बच्चे आपस में साथी बनाते हैं, समूह बनाते हैं, आपसी सहयोग करते हैं इससे बालक की समाजीकरण की प्रक्रिया शुरू होती है ।

(छह) खेल के दौरान बच्चों में कई बार आपसी छुट-पुट

झगड़े बिना शिक्षक की मदद के बच्चे स्वयं ही सुलझाने का प्रयास करते हैं । इस प्रकार के कार्यों में कोई निर्णय लेना पड़ता है जिससे बच्चों में स्वनिर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है ।

(सात) इनके अतिरिक्त कई विषयगत जानकारियां बच्चे खेलों के माध्यम से सहज रूप से प्राप्त कर लेते हैं, जैसे रुमाल झपटटा खेल से सप्ताह के, महीनों के व रंगों के नाम याद करना। लंगड़ी टांग खेल से राज्य व राज्यों के नाम याद करना । 'लालाजी ने लड्डू खाये' खेल से गिनती सीख लेना आदि कई उदाहरण हैं।

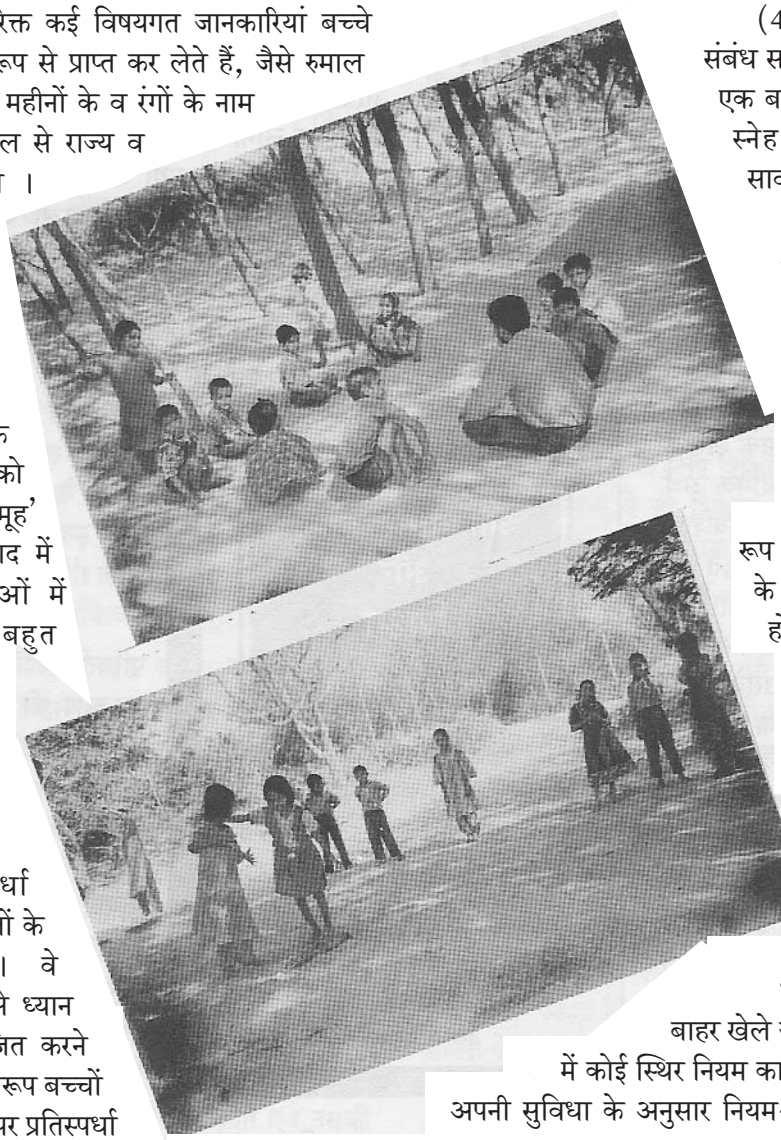

इन सब चीजों को देखकर मेरा विचार है कि आरंभ में 'एकत्रित बालकों' को एक 'सीखने में प्रवृत्त बाल समूह' में परिवर्तित करने तथा बाद में विभिन्न महत्वपूर्ण क्षमताओं में विकास के लिए खेल बहुत आनन्ददायक व कारगर तरीके बन सकते हैं । फिर भी खेलों के चुनाव व खेलते समय निम्न बातों का ध्यान रखना होगा-

(1) कड़ी प्रतिस्पर्धा वाले खेल इस तरह की चीजों के लिए उपयुक्त नहीं होंगे । वे बेहतरीन तरीके से खेलने से ध्यान हटाकर प्रतिद्वन्दी को पराजित करने पर केन्द्रित कर लेंगे । फलस्वरूप बच्चों में आपसी सहयोग के स्थान पर प्रतिस्पर्धा की भावना बढ़ती है ।

(2) खेल ऐसे चुनें जिनमें ज्यादा स्थिर नियम न हों बल्कि बच्चे स्वयं ही खेल के नियम बनायें । नियम तोड़ने पर आपस में बहस व चर्चा करें । स्थिर नियम वाले खेलों के चुनाव से बच्चों द्वारा नियम कायदे बनाने का अवकाश कम हो जाता है जिसका असर बच्चों की भाषाई क्षमता, नियम पालन, नियम निर्माण प्रक्रिया व स्वनिर्णय की क्षमता पर पड़ता है ।

(3) अधिकतर ऐसे खेलों का चुनाव करें जिनको बालक और बालिकाएं दोनों साथ साथ खेल सकें । बालक और बालिकाओं के लिए अलग अलग खेलों का चयन नहीं करें । ऐसा करने पर लिंग भेद की भावना तो कम होगी ही, साथ ही लड़कियों में आत्मविश्वास भी बढ़ता है ।

(4) खेलते समय शिक्षक का संबंध सभी के साथ समान हो। किसी एक बालक या दल के साथ विशेष स्नेह न रखें और इसमें काफी सावधान रहने की जरूरत है ।

(5) जहां तक संभव हो सके स्थानीय खेलों का चुनाव करें। इनके अभाव में सभी स्थानीय खेलों का चयन न करने की परिस्थितियों में ऐसे खेलों का चयन करें जिसमें अधिक से अधिक बालक सक्रिय रूप से भाग ले सकें । खेल कमरे के भीतर व बाहर खेले जाने वाले हों । जैसे नेता नेता चाल बदल, कोड़ा जमाल शाही- पीछे देख मार खायी, तोता कहता है, चिड़िया फुर्र आदि भीतर खेले जाने वाले खेल हैं तो दूसरी ओर सितोलिया, राम-रहीम, अन्धी भैंस, अन्धा ग्वाला, चूहा भाग बिल्ली आयी, आदि बाहर खेले जाने वाले खेल हैं । ऐसे खेलों में कोई स्थिर नियम कायदे नहीं होते हैं - बच्चे स्वयं अपनी सुविधा के अनुसार नियम-कायदे बना लेते हैं।

अत: हमें सोचना चाहिये कि हम विद्यालय में बच्चों को खेलों की दुनिया से दूर न करें, बल्कि विद्यालयों में विशेषकर प्राथमिक शिक्षा में खेलों के महत्व को स्वीकारते हुए बढ़ावा दें ताकि बालक अपने आपको आनन्दित, उल्लासित, स्फूर्तिवान, हमेशा तरोताजा महसूस करें । विद्यालय को एक कठोर अनुशासित, नीरस स्थान के बजाय आनन्द देने वाली, आनन्द के साथ ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में भागीदार संस्थान के रूप में देखें और देखें अपनी उस जगह के रूप में, जहां बालक अपनी बाल क्रीड़ाओं के साथ आनन्द की हिलोरें लेते हुए ज्ञानार्जन करता है ।◆